प्रथम अध्याय

लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का नाट्य साहित्य

प्रथम अध्याय

लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का नाट्य साहित्य --

नाटककार अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए किसी एक पात्र को अपना माध्यम बनाता है । यह पात्र अतीत, वर्तमान का या परिवार या समाज का होता है, या मानसिक भौतिक व्यक्तिगत समष्टिगत होता है । यह बिंब दर्शक के मनपर एक प्रभाव डालता है ।

शास्त्रीय विचार की दृष्टि से भी नाटक वस्तुत: कथावस्तु विचार चरित्र आदि विभिन्न तत्वों की एक संश्लिष्ट इकाई है । किसी नाटक में कथावस्तु पर बल है, तो किसी में चरित्र पर बल है । किसी नाटक में शिल्पसंगठन पर बल है । इस प्रकार नाटककार ने जिसपर अधिक जोर दिया है वह नाटक का आधार माना जा सकता है । इसी आधार पर घटना प्रधान, विचार प्रधान, चरित्र प्रधान, --

इस प्रकार वर्गीकरण होगा । [illegible] मिश्र के नाटकों का वर्गीकरण निम्नप्रकार से हो सकता है ।

	नाटक का नाम		प्रकाशन तिथि
१	अशोके	-	१९२७
२	संन्यासी	-	१९२९
३	राक्षस का मंदिर	-	१९३२
४	मुक्ति का रहस्य	-	१९३४
५	राजयोग	-	१९३४

	नाटक का नाम		प्रकाशन तिथि
६	सिंदूर की होली	-	१९३४
७	आधी रात	-	१९३७
८	नारद की वीणा	-	१९४६
९	गरुडध्वज	-	१९४६
१०	दशाश्वमेध	-	१९४९
११	वत्सराज	-	१९५०
१२	वितस्ता की लहरें	-	१९५२
१३	चक्रव्यूह	-	१९५५
१४	कवि भारतेंदु	-	१९५५
१५	वैशाली में वसंत	-	१९५५
१६	जगद्गुरु	-	१९५८
१७	मृत्युंजय	-	१९५८
१८	धरती का हृदय	-	१९५८
१९	अपराजित	-	१९६३
२०	चित्रकूट	-	१९६३
२१	वीरशंख		१९६७

भारत भूषण चड्डा, शशिशेखर नैथानी, बबन त्रिपाठी, गिरिश रस्तोगी और सावित्री स्वरूप आदि विद्वानों ने मिश्र के नाटकों का चार भागों में वर्गीकरण किया है।

१) सामाजिक (समस्यामूलक) नाटक।

२) ऐतिहासिक (सांस्कृतिक) नाटक।

३) पौराणिक नाटक।

४) चरित्रमूलक (जीवनी) नाटक।

वर्गीकरण की दृष्टि से मिश्र के नाटक

- समस्या नाटक
- सांस्कृतिक नाटक
  - संस्कृतिप्रधान ऐतिहासिक नाटक
  - संस्कृतिप्रधान पौराणिक नाटक
  - संस्कृतिप्रधान जीवनी नाटक

समस्या नाटक --

संन्यासी, राक्षस का मंदिर, मुक्ति का रहस्य, सिंदूर की होली, आधीरात ।

सांस्कृतिक नाटक -

अशोक, नारद की वीणा, गरुड़ध्वज, दशाश्वमेध, वत्सराज, वितस्ता की लहरें, चक्रव्यूह, वैशाली में वसन्त, धरती का हृदय, अपराजित, चित्रकूट ।

पौराणिक नाटक --

चक्रव्यूह, अपराजित, चित्रकूट ।

जीवनी नाटक --

कवि भारतेंदु, जगद्गुरु, मृत्युंजय ।

शिल्प के आधार पर मिश्र के नाटकों का वर्गीकरण ---

१) सामाजिक नाटक ।

२) ऐतिहासिक नाटक ।

३) पौराणिक नाटक ।

४) जीवनी या चरित्रमूलक नाटक

हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण मिश्र - डॉ. बबन त्रिपाठी-पृ. ४१५ ।

सामाजिक नाटक --

१) संन्यासी ।

२) राक्षस का मंदिर ।

३) मुक्ति का रहस्य ।

४) राजयोग ।

५) सिंदूर की होली ।

६) आधीरात ।

ऐतिहासिक नाटक --

१) अशोक ।

२) दशाश्वमेध ।

३) गरुडध्वज ।

४) वत्सराज ।

५) वितस्ता की लहरें ।

६) वैशाली में वसन्त ।

७) धरती का हृदय ।

पौराणिक नाटक --

१) नारद की वीणा ।

२) चक्रव्यूह ।

३) अपराजित ।

४) चित्रकूट ।

जीवनी या चरित्रमूलक नाटक --

१) [illegible] ।

२) जगद्गुरु ।

३) मृत्युंजय ।

शिल्पगठन की दृष्टि से सामाजिक नाटकोंका वर्गीकरण --

१) समस्या नाटक - १) संन्यासी
२) आधी रात

२) विचारप्रधान नाटक - १) राक्षस का मंदिर (प्रतीक नाटक)
२) मुक्ति का रहस्य ।
३) राजयोग ।

३) समस्या एवं घटना प्रधान नाटक --
१) सिंदूर की होली ।

मिश्र जी का (ऐतिहासिक - सांस्कृतिक) नाट्य-साहित्य --

पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र के यश के आधारस्तंभ इनके समस्या नाटक ही हैं, किन्तु मिश्र जी ने समस्या नाटकों से लगभग तिगुने ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटकों की रचना की है। इन ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटकों की लम्बी सूची होने पर भी मूल्य एवं महत्व की दृष्टि से निःसन्देह उनके समस्या नाटक ही महत्वपूर्ण हैं। समस्या नाटकों के पुरस्कर्ता तथा प्रतिनिधि लेखक मिश्र जी अपने इस मौलिक कृतित्व से जिस गौरव के अधिकारी हैं उस रूप में सांस्कृतिक नाटकों रचयिता मिश्र जी नहीं। तथापि मिश्र जी के सांस्कृतिक नाटकों का हिन्दी नाट्य-नाट्य-साहित्य में विशिष्ट स्थान है और इस क्षेत्र में इन्होंने अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर लिया है।

कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से मिश्र जी ने यहाँ भी नूतन उद्भावनायें की हैं, सरणि-निर्देश किया है। अतएव मिश्र जी के इस वर्ग के नाटकों की समीक्षा कर उनकी एतद्विषयक मान्यताओं तथा शिल्पवैशिष्ट्य को प्रकाशित करनेवाले स्थलों का अविस्तर विवेचना कर इनकी इस प्रवृत्ति का विश्लेषाण समीचीन होगा।

मिश्र जी के ऐतिहासिक - सांस्कृतिक नाटक --

१) अशोक --

" अशोक " मिश्र जी का पहला ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटक है । उन्होंने यह नाटक अपने कालेज जीवन में लिखा था । इसकी रचना सन १९२६ में और प्रकाशन सन् १९२७ में हुआ । इस नाटक का नामकरण नाटक के नायक के नाम पर हुआ है । भारतीय इतिहास की प्रख्यात कथा के आधार पर अशोककालीन प्रमुख घटनाओं का वर्णन नाटक का आधार है । परन्तु उन घटनाओं का विस्तार मिश्र जी ने अपने ढंग से किया है । इस नाटक में उन्होंने तत्कालीन ब्राह्मण-बौध्द संघर्ष को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है । जिस विश्व-सम्राट " अशोक वर्धन " की पुण्य गाथाओं से बाल्हीक से सुदूर " दक्षिणापथ " तक के प्रस्तर खण्ड आज भी अंकित मिलते हैं, उन्हीं अशोक के महान मानसिक परिवर्तन का उन्मेष इसमें दिखलाया गया है । नाटक तीन अंकों में विभाजित हैं ।

प्रस्तुत नाटक से मिश्र जी यह सिध्द करना चाहते हैं कि अशोक प्रकृति से क्रूर नहीं था, परंतु परिस्थितियों ने उसे कुछ इस प्रकार के कार्य करने को बाध्य कर दिया और वह अनिच्छापूर्वक घटना चक्र को गतिशील बनाने में योग देता चला गया । जैसे ही उसको ब्राह्मण धर्मनाथ के जघन्य कृत्यों और कुचक्रों का पता चला, उसको अत्यधिक आत्मग्लानि हुई और उसने हमेशा के लिए हिंसा का परित्याग करके बौध्द धर्म की दीक्षा ले ली । धर्मनाथ का अन्त में विष खाकर आत्महत्या करना नाटककार का एक दूसरा उद्देश्य सिध्द करता है और वह यह कि कुकृत्य चाहे धर्म के नामपर ही क्यों न किये जायें, वे कुकृत्य ही कहलायेंगे और उन्हें उनका दण्ड भोगना ही पड़ेगा । गिरीश के मुख से इसीलिए धर्मनाथ के अन्तिम क्षणों की मानसिक यंत्रणा का वर्णन कराया गया है ।

२) नारद की वीणा --

" नारद की वीणा " नाटक में मिश्र जी ने भारतीय संस्कृति की आरम्भिक अवस्था का उत्कर्षपरक परिचय देते हुए बताया है, कि हमारी संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है तथा किसी भी विदेशी शासक की संस्कृति को हमने भय,आतंक और

दबाव से कभी स्वीकार नहीं किया, बल्कि ब्रिटिश शासकों ने स्वयं हमारी विकसित जीवन प्रणाली तथा आदर्श संस्कृति को स्वीकार कर उसे आत्मसात् करने में गौरव का अनुभव किया ।

इस नाटक में नाटककार का प्रधान उद्देश्य यही रहा है, कि श्री राहुल जी ने प्रचार के आवेश में आर्यों को जो सब ओर से श्रेष्ठता और द्रविडों को सब ओर से हीनता सिद्ध की है, उसके परिहार के साथ ही साथ भारतीय जीवन-दर्शन के वे तथ्य आ जायें, जो कि विदेशियों के संपर्क के हर अवसर पर इस देश में प्रकट हुई हैं । जब जब विदेशियों का संपर्क इस देश के साथ होगा कुछ काल के लिए वैष्णवविधान चल पड़ेगा, किन्तु शैवध्वज, हिरण्यकशिपु सनातन है और सनातन रहेगा । इस नाटक के एक पात्र देवदत्त का यह कथन है । इस नाटक के अनुसार भौतिक, शारीरिक शक्ति में प्रबलतर आर्य जाति यहाँ के द्रविडों को युध्द में हरा देने में तो सफल रही, किन्तु समय के प्रवाह के साथ बुध्दितत्त्व में मूल निवासियों से पराजित होकर उन्हीं के आचार-विचार और संस्कृति में लय हो गई ।

मिश्र जी ने इस नाटक में यह दिखाया है, कि आरम्भ में विदेशी आर्य आसुरी प्रवृतियों से आक्रान्त थे, पर द्रविडों के संसर्ग से उनमें कला, संस्कृति तथा विद्याओं के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ एवं सुसंबध्द जीवन-प्रणाली के अनुसरण की कामना उनमें जाग उठी । इस नाटक के पात्रों के संवादों से भारतीय संस्कृति के प्राचीनकालीन उदात्त रूप को सामने खडा किया गया है । इस नाटक पात्र नारद, नारायण, नर, विजयकीर्ति, प्रहलाद, मेनका आदि भारत के मूल निवासियों के नेता हैं । दूसरी ओर संस्कृत सुमित्र, सोमश्रवा, चन्द्रभागा आर्यों के श्वेतांगों के प्रतीक हैं । दोनों पक्षों का समन्वय और भविष्य का समृध्द सम्मिलित जीवन इसका उद्देश्य है । जो हमारी आज की समस्याओं की ओर भी निश्चित संकेत करता है । यह कहना ही अधिक ठीक होगा, कि मिश्रजी यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण के साथ हिन्दी साहित्य में आये थे, अनुभूति और सत्य की परख इनकी ज्यों ज्यों बढती गई है, इनकी यह शक्ति भी बढ़ी है । घटनाक्रम की स्वाभाविकता, संवाद और व्यापार की मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से इस नाटक में भी उतनी ही अच्छी

निखरी हैं, जितनी 'मुक्ति का रहस्य' के बाद की सभी रचनाओं में ।

इस नाटक की उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त इसमें भाषा, संवाद, मोहक प्रसंग, मधुर एवं रोमांचकारी घटनायें, उद्धरणीय सूक्तियाँ तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि तत्त्व उत्कर्ष पर दिखाई पड़ते हैं । कुल मिलाकर मिश्र जी का यह प्रथम सांस्कृतिक नाटक महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है । इस नाटक में मिश्र जी का दृष्टिकोण आर्य सभ्यता को हीन दिखलाना और अनार्य सभ्यता की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करना रहा है । नाटक तीन अंकों में विभाजित है । लेकिन इन अंकों का दृश्यों में विभाजन नहीं है ।

3) गरुडध्वज --

मिश्र जी के इस संस्कृति - प्रधान ऐतिहासिक नाटक का प्रकाशन सन १९४६ में हुआ । इसमें उन्होंने भारतीय इतिहास के आदियुग-जिसे अज्ञातयुग भी कह सकते हैं -- की घटनाओं को कथानक का आधार बनाया है । मौर्यकाल से लेकर ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक के ऐतिहासिक तथ्यों को गवेषणात्मक ढंग में साहित्यिक परिधान दिया गया है । कथानक का आधार ग्वालियर के पास स्थित मिलसा नामक नगर तथा उसके शासक हैं । शुंगवंश के अग्निमित्र को कथा का पात्र बनाकर 'मालविकाग्निमित्र' के प्रणेता कालिदास को भी खड़ा कर दिया गया है ।

इस नाटक में जो वातावरण चित्रित है वह शुंग वंश के ऐतिहासिक वातावरण से अनुप्राणित है । नाटक में शुंगकालीन भारत के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक जीवन का परिचय मिलता है । इसमें शुंग वंश की स्थापना से लेकर समाप्ति तक का उल्लेख है और साथ ही मालव साम्राज्य की प्रतिष्ठा का चित्रण है । भागवत धर्म का उत्कर्ष और बौद्ध धर्म का पतन बताते हुए नाटककार ने सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय उत्कर्ष को व्यक्त किया है ।

'गरुडध्वज' नाटक में भारत की गौरवमयी प्राचीन संस्कृति, राष्ट्रीय उत्कर्ष और एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण का स्वर मुखरित हुआ है । नाटक आधुनिक यथार्थवादी शैली पर लिखा गया है । प्राचीन कथानक को आधार बनाने

पर भी काशिराज की कन्या वासन्ती के माध्यम से उस युग की धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक स्थापनाओं, जटिल नारी समस्याओं का आभास हो जाता है । कुछ ऐतिहासिक पात्रों को छोडकर शेष में काल्पनिक तत्वों की नियोजना बडी सफलता-पूर्वक हुई है । इस युग की सामाजिक स्थिति का जो चित्रण इस नाटक में हुआ है, उसमें भारतीय समाज के अनेक पक्ष प्रतिबिम्बित हो उठे हैं । इस नाटक में लेखक नारीवर्ग के प्रति सहानुभूतिशील दिखाई पडता है तथा नूतन विचारों के प्रति आस्थावान भी है । इसमें तीन अंक हैं । अंक के बीच दृश्य-परिवर्तन का विधान नहीं है । गीत एक भी नहीं है । नाटक का कथानक मात्र ऐतिहासिक है, उसका सृजन मिश्र जी की अपनी कल्पना और चिन्तन के सहारे हुआ है ।

४) दशाश्वमेध --

दशाश्वमेध - संस्कृति-प्रधान इस ऐतिहासिक नाटक का प्रकाशन सन् १९५० में हुआ । इस नाटक में भारशिव नागों के वंश में जन्मे वीरसेन नामक निर्भीक, साहसी एवं योद्धा के शौर्य की कहानी है । बीस वर्षीय वीरसेन कुषाणसाम्राज्य को चुनौती देकर देश को स्वतंत्र करने का सफल स्वप्न देखता है । इस प्रकार इस नाटक में दूसरी और तीसरी शताब्दी के कुषाण-साम्राज्य के अन्तिम दिनों का वातावरण चित्रित किया गया है । यह वह समय था, जब कुषाण साम्राज्य अपनी अवनति पर था और भारत के पूर्वी भाग में भारशिव नागों का उदय हो रहा था । नाटक में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक वातावरण को पर्याप्त रूप में उभारा गया है ।

प्रस्तुत नाटक के वासुदेव की पुत्री कौमुदी वीणावादन में रस लेती है । इसी कौमुदी के वरण को लेकर दो राजकुमारों में प्रतिद्वंद्विता आरंभ होती है और विजयी वीरसेन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार काशी में गंगा के किनारे कौमुदी से गान्धर्व विवाह कर अश्वमेधों के उपरान्त इस कार्य से विरत होता है और इस स्थल का नाम दशाश्वमेध पडता है । नाटक में कथोपकथन की भाषा सरल, मुहावरेदार तथा चलती फिरती है । नाटक में तीन अंक हैं । प्रत्येक अंक में दो दृश्य हैं । प्रत्येक दृश्य में स्पष्ट रंग संकेत हैं । नाटक में गीति-योजना नहीं है ।

५) वत्सराज --

प्रसिद्द संस्कृति-प्रधान इस ऐतिहासिक नाटक की रचना सन १९४६ में हुई । इसका प्रथम प्रकाशन सन १९५० में हुआ । इस नाटक के कारण मिश्र जी को पर्याप्त लोकप्रियता मिली । नाटक में रूप और कला के धनी वत्सराज उदयन का चरित्र भास रचित 'स्वप्न वासवदत्ता', 'प्रतिज्ञा यौगंधरायण' और कथा सरित्-सागर के आधार पर चित्रित हुआ है । नाटक में उदयन और तथागत के समय के वातावरण को उपस्थित करते हुए यूनानी संस्कृति की झलक भी दी गई है । नाटककार ने उदयन के चरित्र की स्वच्छता तथा दृढता पर अधिक प्रकाश डाला है ।

इस नाटक में मिश्र जी को अपनी सनातन मान्यताओं के प्रसार के लिये पर्याप्त अवकाश मिला है । कथानक अवन्ती का है, जब उदयन के शासनकाल में बौध्द धर्म का प्रभाव सम्पूर्ण देश में बड़े वेग से फैल रहा था, किन्तु राजा उदयन उसका विरोधी था । बौध्दधर्म की संहिताओं में उदयन को प्रकृति-विरोधी नियमों का समावेश जान पडा । इन नियमों को उसने भारतभूमि के लिये हानिकारक बताकर बौध्दधर्म के विकास को रोकने की चेष्टा की । इसी के परिणामस्वरूप बौध्द ग्रंथों में उदयन के चरित्र को हीन दिखाया गया है । इतना ही नहीं परवर्ती साहित्य में, यहाँ तक कि हिन्दी के अनेक लेखकों ने भी अपनी पुस्तकों में उदयन के चरित्र के साथ अन्याय किया है । सांस्कृतिक लेखक के रूप में मिश्र जी ने अपना यह दायित्व अनुभव किया कि पूर्वपुरुषों के चरित्रों तथा इतिवृत्तों को निष्कलंक दिखाना तथा उन पर लगे आरोपों को जो, वस्तुत: असत्य है, दूर करना कर्तव्य है ।

उदयन के चरित्र पर पडनेवाले इसी मिथ्या आरोप को दूर करने के लिए इस नाटक की रचना हुई । नाटककार ने भास के नाटकों की चर्चा करते हुए उनके मंत्री यौगन्धरायण के कूट नीति - कौशल की प्रशंसा की है और यहाँ भी पद्मावती से उदयन के विवाह-संबंध को संभव बनाने के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण मंत्री यौगन्धरायण ही करता है । मंत्री ने वासवदत्ता के जल मरने की कल्पित कथा के प्रचार से यह सब संभव कर दिखाया । उदयन के चरित्र को उदात्त सिध्द करने के लिए नाटककार ने दिखाया है कि अत्यंत रूपवान कुमारियों का

मन मुग्ध करनेवाला सौंदर्य पाकर भी उदयन कहीं साश्रित नहीं होता । दूसरी बात यह है, कि पूरे राजकुल के प्रभावित होने पर भी उदयन बौध्द धर्म के प्रभाव में नहीं आता । इसका कारण उदयन का हठीलापन नहीं, बल्कि भारतीय समाज तथा संस्कृति की रक्षा के लिए उसे बौध्द धर्म का प्रसार रोकना है । इस प्रकार नाटककार ने अपनी मान्यताओं की व्यावहारिक चरितार्थता प्रकट कर दी है । भाषा अत्यंत कवित्वपूर्ण तथा प्रवाहमयी है । वत्सराज उदयन तथा महासेन और यौगन्धरायण के संवादों में ओजस्विता, दृढ़ता का स्वर गूँज उठता है । यूनानी सभ्यता और बौध्द धर्म की आलोचना करते हुए भारतीय जीवन दर्शन को सर्वोत्कृष्ट बताया गया है । वत्सराज के चरित्र में तप और भोग का समन्वित रूप प्रस्तुत करते हुए भारतीय संस्कृति का आदर्श रूप उद्घाटित किया है । नाटक में तीन अंक हैं । गीतों का अभाव है । सूच्य घटनाओं की अधिकता है ।

६) वितस्ता की लहरें ---

सांस्कृतिक-ऐतिहासिक नाट्य-परंपरा में मिश्र जी का यह नाटक सन १९५२ में प्रकाशित हुआ । इतिहास प्रसिध्द सिकन्दर और पुरु के युध्द की पृष्ठभूमि पर इस नाटक की रचना हुई । नाटक का आधार वितस्ता के तट पर यवन सेना का पहुँचना, चोरी से वितस्ता पार करना और वीर पुरु के साथ सिकन्दर का युध्द है । नाटक के माध्यम से भारत के प्राचीन आत्म-गौरव, पराक्रम और संस्कृति का परिचय मिलता है । यवन संस्कृति के साथ ही मिश्र और पारस की सभ्यता का चित्रण है ।

नाटककार का स्पष्ट मत है, कि इस देश पर अनेक बार विदेशियों का आक्रमण हुआ । इस देश को अनेक बार सभ्यता, संस्कृति तथा आचार-विचार का घात प्रतिघात देखना पड़ा । इतना होने पर भी भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण रही और विदेशियों ने उसके समक्ष नतमस्तक होना सीखा । हमने भी अनेक बार विदेशी सभ्यता की उत्तम बातों को ग्रहण किया ।

इस नाटक में मिश्र जी ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि हमारी पुरानी संस्कृति की नींव पर ही नई संस्कृति का निर्माण समीचीन है । इस नाटक में दो विभिन्न संस्कृतियों की आपसी टकराहट में भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता

प्रदान करने में मिश्र जी का कार्य महनीय है । उनका विश्वास है, कि सिकन्दर के आक्रमण से हमारे देश को विशेष क्षति नहीं पहुँची । "मकदूनियाँ" के सिकन्दर ने इस पर जो आक्रमण किया था, उसकी कोई भी सूचना हमें अपने पुराणों से नहीं मिलती, जैसे वह आक्रमण इस देश के इतिहास साहित्य में स्वीकार ही नहीं किया । हमारे राष्ट्र शरीर पर उसका घाव सम्भवतः गहरा नहीं हुआ, खरोंच की तरह वह लगा और बिना किसी टिकाऊ प्रभाव के मिट भी गया । यूनानी इतिहासकारों ने सिकन्दर की विजय का जो कुछ लेखा-जोखा दिया, उसी के आधार पर वितस्ता के तट पर उसके विजय की बात हम भी मानने लगे हैं ।

इस नाटक में मानवता के निर्बन्ध विकास तथा उसके समन्वयात्मक पहलू को पुष्ट किया गया है । ग्रीक सभ्यता को भारतीय संस्कृति के समक्ष नतशिर दिखाकर दोनों के समन्वय की कामना प्रकट की गई है । नाटक में ऐतिहासिकता पर बल देने का लेखक का विचार जान पडता है । इस प्रकार नाटककार ने यवन संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की विजय दिखाते हुए तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला है । सिकन्दर और पुरु के इतिहास प्रसिध्द युध्द की स्थितियों को नाटककार ने अपनी प्रतिभाशाली कल्पना के सहारे परिवर्तित कर दिया है । आधुनिक शैली पर रचे गये इस नाटक में तीन अंक हैं । अंकों के बीच में कहीं भी दृश्यपरिवर्तन नहीं हुआ है । इस नाटक का स्वतंत्र विवेचन अलग किया गया है ।

७) वैशाली में वसन्त ---

मिश्र जी के सांस्कृतिक ऐतिहासिक नाटकों के क्रम में इस नाटक का प्रकाशन सन १९५५ में हुआ । भारत के प्राचीन गणतन्त्र वैशाली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नाटककार ने अपनी कल्पना के सहारे नाटक की रचना की है । इसमें इतिहास प्रसिध्द वैशाली की नगर-वधू का नया रूप (नगर माता) देखने को मिलता है ।

प्रस्तुत नाटक ईसा से ६०० वर्ष के वज्जि संघ के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक जीवन को इतिहास एवं कल्पना के आधार पर चित्रित करता है । यद्यपि इसमें इतिहास का पुट कम तथा कल्पना की उडान अधिक है ।

इस नाटक में वैशाली के युवकों का वहाँ के प्राचीन शासकों के विरुद्ध विद्रोह ,प्राचीन सामंती परम्परा के विरोध में उठी ध्वनि है, जिसकी प्रतिध्वनि आज के भारतीय समाज में भी गूँज रही है । इसमें मुख्य चरित्र वैशाली की अपूर्व सुन्दरी अम्बपाली का है । हिन्दी में इस चरित्र को आधार बनाकर पर्याप्त रचनाएँ हुई हैं । प्राय: सभी में आम्बपाली का चरित्र नगर-वधू,गणिका आदि रूप में चित्रित हुआ है । अर्थात वह समाज का हीन प्राणी मानी गयी है, किन्तु मिश्र जी ने उसे लोक-कल्याणी के रूप में चित्रित किया है और उसकी सेवावृत्ति ने उसे उदात्त स्थान प्रदान किया है ।

वज्जि संघ के भूतपूर्व सेनापति वीरभद्र का पुत्र रोहित सुन्दर,पराक्रमी एवं सुशील युवक है । वह अपनी पत्नी रंभा की सहायता से अजातशत्रु को मात देकर रत्नपिटारे को प्राप्त कर लेता है । दास प्रथा का विरोध करके वज्जि संघ के सभी दासों को मुक्त करा देता है तथा संघ के तरुणों का सफल नेतृत्व भी करता है । साथ ही चण्डसेन विद्यापीठ में धनुर्वेद के आचार्य बनते हैं, वसंतोत्सव मनाया जाता है और अंबपाली भावी पीढ़ी के मंगल की कामना में पुष्करिणी पर एक गीत गाती है । वह कामना करती है कि भावी पीढ़ी के लिए भी वैशाली में वसन्त की गूँज सदैव उभरती रहेगी ।

इस प्रकार इस नाटक में अम्बपाली-अजातशत्रु-कालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक,धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का वर्णन मिलता है । अन्य नाटकों की तरह इस नाटक में भी भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप के प्रस्तुतीकरण में नाटककार ने बौद्ध धर्म की आलोचना की है,साथ ही भारतीय संस्कृति की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा भी की है । दास-प्रथा, वज्जि संघ की कार्यविधि, गौतम बुद्ध तथा उनके संघों के घातक प्रभाव आदि भी नाटक में व्यक्त हुए हैं । नाटक की रचना तीन अंकों में हुई है । नाटक की रचना में भारतीय शैली की झलक विशेष रूप से चरित्र-चित्रण व रस दृष्टि से दिखाई देती है ।

धरती का हृदय --

मिश्र जी के इस संस्कृतिप्रधान ऐतिहासिक नाटक का प्रकाशन सन १९६२ में हुआ । यह नाटक मुख्य रूप से विष्णुगुप्त के प्रयास द्वारा भारत की धरती का

उध्दार की कथा को प्रस्तुत किया गया है । इस नाटक के माध्यम से मिश्र जी ने विष्णुगुप्त को इतिहास का पहला ज्ञात अहिंसा-पालक सिध्द करने का प्रयास किया है - यह नाटक चन्द्रगुप्त की माता देवकी के उध्दार और यवनों से मातृभूमि के उध्दार की कहानी पर लिखा गया है । नंद-वंश के अन्तिम दिनों के भारत का वातावरण नाटक में व्यक्त हुआ है ।

इस नाटक का विष्णुगुप्त दस वर्ष पहले नंदवंश के नाश की प्रतिज्ञा करके निकलता है । कुमार चन्द्रगुप्त को अपना धर्मपुत्र बनाकर, मगध की राजधानी को केन्द्र बनाकर देश में नया प्राण फूँकना चाहता है । वह चाहता है, कि संपूर्ण देश एक राष्ट्र बने । उसकी दृष्टि में खण्डित देश और खण्डित काया दोनों समान हैं ।

विष्णुगुप्त इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चन्द्रगुप्त को राष्ट्र का सम्राट बनाने की योजना बनाता है एवं बिना एक बूँद भी रक्त बहे इस कार्य के सफल होने की कामना करता है । बिना युध्द किए ही मलयकेतु एवं सुमाल्य नंद को चन्द्रगुप्त के मार्ग से हटा देता है । सिल्यूकस की पुत्री हेममालाका हरण करना और चन्द्रगुप्त से उसका विवाह करना विष्णुगुप्त की कूटनीति एवं प्रखर बुध्दि का परिचायक है । ऐसा ज्ञात होताहै, कि इस नाटक पर गांधीवाद का प्रभाव है । नाटक में विष्णुगुप्त के व्दारा जिस अहिंसा सिध्दांत का प्रतिपादन कराया गया है, वह गांधी से पूर्व कहीं भी इतिहास में इतने सशक्त रूप में नहीं मिलता । 'मुक्तियात्रा' पर चार लाख सेना लेकर जाना एवं बिना एक बूँद भी रक्त गिराए मगध साम्राज्य को प्राप्त कर लेना विष्णुगुप्त के अहिंसात्मक प्रवृति का परिचायक है । नाटक में आचार्य कन्या अनुराधा और चन्द्रगुप्त का प्रेम प्रशंसनीय है ।

प्रस्तुत नाटक में मुख्य रूप से ऐतिहासिक परिवेश में राजनैतिक विचार उभर कर सामने आये हैं । जिसमें यथार्थ कम और कल्पना की उड़ान अधिक है । चाणक्य के ऐतिहासिक स्वरूप को नए ढंग से प्रस्तुत किए हैं । मूल कथानक में प्रासंगिक कथाओं के साथ बहुत-सी सूच्य-कथाएँ भी हैं । नाटक में बौध्द धर्म का विरोध भी यत्र-तत्र दिखाई देता है । राष्ट्रीयता की भावना और जातीय गौरव

को अभिव्यक्ति मिली है । 'धरती का हृदय' तीन अंकों में विभाजित है । नाटक के अंत में विष्णुगुप्त मातृभूमि के हृदय को अमृत से भरा रखने की कामना करता है ।

वीर शंख --

मिश्र जी के सांस्कृतिक ऐतिहासिक नाटकों की कड़ी का अन्तिम नाटक 'वीर शंख' है जिसका प्रकाशन सन १९६७ में हुआ । इस नाटक में हूणों की उस संहार लीला का वातावरण उभरकर आया है जिसमें वंक्षु और उत्तर - पश्चिम समुद्र से लेकर नर्मदा के तट तक राजवंश उखड गए, नगरियाँ - महानगरियाँ ग्राम जनपद सब के सब मिट गए । इस नाटक में मिश्र जी ने चाणक्य और पुष्यमित्र की कोटि के अवन्ती के आचार्य कालमणि को प्रस्तुत किया है । नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भारतीय संस्कृति का गौरवशाली स्वरूप व्यक्त हुआ है । नाटक के कार्य-व्यापार एवं उसमें वर्णित घटनाएँ नाटककार की कल्पना पर आधारित हैं । यह नाटक तीन अंकों में विभाजित है । इन अंकों का दृश्यों में विभाजन नहीं है । नाटक में गीत-योजना है ।

इसके बाद मिश्र जी के सांस्कृतिक - पौराणिक नाटक इस प्रकार हैं -- 'जगद्गुरु', कवि भारतेंदु, चक्रव्यूह, अपराजिता,तथा चित्रकूट । जगद्गुरु में शंकराचार्य की विद्या की जयगाथा का गान है । शंकराचार्य को इस रूप में चित्रित कर मिश्र जी ने भारतीय आचार्यों की विद्या तथा राष्ट्र-हित के लिए विद्या के उपयोग का निदर्शन प्रस्तुत किया है । इस प्रकार 'जगद्गुरु' में शंकराचार्य के अलौकिक व्यक्तित्व के प्रकाश में नवीं शताब्दी के भारत के दर्शन कराते हुए आधुनिक भारत को समन्वय,समरसता,और लोक-संग्रह का सन्देश भी दिया है । कवि भारतेन्दु में भारतेन्दु के जीवन की प्रसिद्ध घटनाओं की विवृति हुई है । यह जीवनीप्रधान नाटक है जो हिन्दी में अपनी विधा को लेकर नया होता हुआ भी कला में प्रौढ है । 'चक्रव्यूह' में द्रौपदी को बाँझ कहना व उसके कारण महाभारत युध्द का होना बताया गया है । महाभारत के युध्द का वर्णन इसमें है । 'अपराजित' में महाभारत के अजेय महारथी अश्वत्थामा के अतुलनीय पराक्रम का वर्णन है । और महाभारत विरुध्द कल्पनाओं द्वारा पाण्डवों को पापी-कलंकी आदि दिखाने का प्रयत्न किया

गया है । ' चित्रकूट ' में लक्षाण और जानकी के संवादों में मृग-मांस खाने, उसी भेद से दीपक जलाने और उससे ही जानकी द्वारा केश-विन्यास करने के प्रसंगों को दिखाया है ।

इस प्रकार पौराणिक कथानकों के माध्यम से मिश्र जी ने नई मान्यताओं की स्थापना की है । पौराणिक कथाओं का अन्धानुकरण करना उनका उद्देश्य नहीं है क्योंकि उन्होंने पौराणिक कथानकों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोन अपनाया है । मिश्र जी ने महान चरित्रों के जीवन की प्रमुख घटनाओं के माध्यम से जातीय गौरव प्रदर्शित किया है । और वर्तमान समाज को उद्बोधन के रूप में चेतावनी दी गई है ।

निष्कर्ष ---

मिश्र जी के सांस्कृतिक नाटकों के विवेचन से यह स्पष्ट है, कि मिश्र जी को भारतीय संस्कृति से गर्व है । और वे अपनी प्राचीन परम्परा का अपने नाटकों से समर्थन करते रहे । उनके नाटक की प्रत्येक पंक्ति राष्ट्र-भावना तथा सांस्कृतिक गौरव को अभिव्यक्त करती है । उनका प्रत्येक नाटक राष्ट्रोत्थान में अर्पित है । प्रत्येक नायिका भारतीयता की मूर्ति है ।

मिश्र जी ने अपने सांस्कृतिक ऐतिहासिक नाटकों में जहाँ जहाँ भी अवसर मिला है बौद्ध धर्म की कटु आलोचनाएँ की है । उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि बौद्ध धर्म के कारण भारतीय संस्कृति को बहुत ठेस पहुँची गई है । उनका स्पष्ट मत है कि प्राचीन भारतीय आर्य संस्कृति ही आदर्श संस्कृति है जिसका अनुगमन हमारे लिए कल्याणकारी है । इसलिए उन्होंने ' वितस्ता की लहरें ' नाटक में यवन-संस्कृति को हीन बताया है ।

मिश्र जी के सभी नाटकों में भारतीय नीति, धर्म, सदाचार, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता तथा अध्यात्म का विश्लेषण किया गया है । अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिश्र जी ने ढूँढ-ढूँढ कर ऐसे कथानक एकत्र किये है जिनसे उनकी अभीप्सित मान्यताओं का व्यापक प्रचार हो सके । राष्ट्रिय नव निर्माण की यही कामना

उनके सांस्कृतिक नाटकों की प्रेरणा हैं । इस प्रकार भारतीय संस्कृति को अधुनातन विशेषताओं से परिष्कृत कर सामने रखना इनका प्रधान कार्य रहा हैं । इसी कारण मिश्र जी के ऐतिहासिक - सांस्कृतिक सभी नाटक हिन्दी नाट्य-साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुके हैं । और मिश्र जी ने नाटकों की प्राय: सभी विधाओं में सफलतापूर्वक कार्य किया हैं । इस कारण उनके नाटकों में व्यक्त विचारधारा अपनी प्रखरता से हृदयों को उद्वेलित करने के लिए हिन्दी नाट्य साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगी ।